IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भगवानदास मोरवाल का उपन्यास 'काला पहाड़' में अभिव्यक्त साझा संस्कृति के तत्व

शोध निर्देशिका
डॉ० स्नेहलता गुप्ता प्रो०
गिन्नी देवी गर्ल्स पी०जी० कॉलिज, मोदी नगर

शोधार्थी
चाँदनी रानी
ईस्माइल पी०जी० कॉलिज, मेरठ

संस्कृति किसी जाति या देश की अन्तरात्मा है इसके द्वारा उस देश और काल के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है जिसके आधार पर वह अपने सामाजिक या सामूहिक आदर्शों का निर्माण करता है ''संस्कृति का प्रभाव हमें व्यक्तिगत तथा सामाजिक दायित्वों एवं पारम्परिक शिष्टाचारों में परिलक्षित होता है। संस्कृति के प्रभाव से ही व्यक्ति को ग्रहस्थ, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक वैज्ञानिक, कलात्मक एवं धार्मिक ऐसे समस्त कार्यों को करने की प्रेरणा प्राप्त होती है, जो व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रगति और उत्थान की दृष्टि से वांछनीय है। संस्कृति को हम साहित्य कला दर्शन विज्ञान, सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक विश्वास किसी भी रूप में देख सकते है।[1] भगवान दास मोरवाल जिस मेवात क्षेत्र से आते हैं वहाँ हिन्दू और मेवों की संख्या लगभग बराबर सी है साथ ही यह क्षेत्र हिन्दू मुस्लिम साझा संस्कृति का प्रतीक है वस्तुतः इसी क्षेत्र को आधार बनाकर उन्होंने 'काला पहाड़' 'बाबल तेरा देश में' 'हलाला', 'खानजादा' जैसे कालजयी उपन्यासों की रचना की हैं। वास्तव में साहित्य में वही प्रतिबिम्ब उभरकर आता है जो समाज के मध्य रहकर प्रभावित हो रहे साहित्यकार के मानस पर अंकित होता है। लेखक ने अपने उपन्यास 'काला पहाड़' के अन्तर्गत हिन्दू मुस्लिम दोनों समाज के धर्म, संस्कृति रीति रिवाजों परम्पराओं का बहुत ही गहन एवं सूक्ष्मतम वर्णन किया है इनके उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम जीवन से जुड़ा यथार्थ अनुभूतिजन्य होने के कारण अत्यन्त सहज एवं स्वभाविक ढंग से उभरा है।

'काला पहाड़' के अन्तर्गत इन्होंने मेवों व हिन्दुओं को साझा संस्कृति का किया है। राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश की सीमाओं में विस्तृत है 'मेवात अँचल यह इलाका 'मेव' बहुल होने के कारण ही मेवात कहलाया। मेवात क्षेत्र की धार्मिक परम्पराओं के अध्ययन में एक विचित्र बात नजर आयी है, वह है हिन्दू और इस्लाम धर्म की मिली–जुली संस्कृति। मेव जाति जहाँ एक तरफ स्वयं को मुसलमान मानती है, वहीं हिन्दुओं के रीति–रिवाजों को भी छोड़ नहीं पाई है। यही कारण है कि ये लोग स्वयं को 'मेव' कहते है न हिन्दू : न मुसलमान। धर्म और संस्कृति के इस मिले जुले रूप को दिखाकर लेखक दोनों धर्म के कट्टर पंथियों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

पूरे उपन्यास के एक तरफ तो इस्लाम संस्कृति उभरकर आती है तो दूसरी तरफ हिन्दू संस्कृति। पांचों वक्त की नमाज, विवाह में निकाह की रस्म, अजान, मस्जिद में जाकर नमाज अदा करना, कुरान–शरीफ का जिक्र आदि इस्लाम धर्म के नियम है तो हिन्दुओं के चाक–पुजाई, भात–टीकना, बनवारा निकालना, बारात के बाद खोड़िया की परम्परा, द्वार रूकाई नेग, न्यौता आदि रीति रिवाज भी मेवों में प्रचलित हैं। सलेमी जैसे प्रबुऽऽ लोग मंदिरों में होने वाली आरती को भी उतना ही महत्व देते हैं जितना कि स्वयं की नमाज को। इसका कारण है कि 'मेव जाती मूलतः सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजपूत

रही है जो बाद में मुसलमान हो गई। इसलिए वे अब भी हिन्दुओं की परम्पराओं को छोड़ नहीं पाए हैं। प्रो0 उस्मानी ने मेवों के इतिहास पर चर्चा करते हुए जो कहा है, वह मेव जाति के उदगम पर पूरी तरह सटीक है। ''वास्तव में मेव एक पुरानी क्षेत्रीय कौम है, जिसने बाद में इस्लाम कुबूल कर लिया था। ज्यादातर हिस्टोरियस की एक ही राय है कि मेवों के पुरखे चंदरवंशी और सूरजवंशी राजपूत थे जो तोमरी चौहान, राठोर और यादव के नाम से जाने जाते हैं। कुछ मेवों को खासकर राजपूतों की तीन शाखाओं यानी वंशो और पालों की बारह उपशाखाओं से जोड़ते हैं ये शाखाऐं है– यादव तोमर और कछवाह''[2] इन राजपूत वंशी लोगों ने कब इस्लाम ग्रहण किया इस पर प्रो0 उस्मानी ने अपने विचार प्रकट किए है ''कहा जाता है कि मेवों के बारह पालों में से पाँच पालों ने जो कि यादवों से ताल्लुक रखते थे और जो चंदरवंशी कहलाते थे सैयद सालार मसूद गाजी के वक्त इस्लाम कुबूल कर लिया था और बाकी के सात पालों ने, जो कि सूरजवंशी राजपूतों से ताल्लुक रखते थे बलवन के वक्त इस्लाम कुबूल कर लियाा था। इससे पहले कुतुबुद्दीन ऐबक के वक्त भी बहुत से मेवों ने इस्लाम कुबूल कर लिया था।[3]

इस प्रकार मेवात क्षेत्र में हिन्दू व मुस्लिम संस्कृति का समन्वित रूप दिखायी पड़ता है। यही कारण है कि यहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक होते हुए भी कभी दंगे फसाद नहीं हुए। विभाजन के समय भी हिन्दुओं ने मेवों को पाकिस्तान जाने से रोका था। सलेमी का पिता भूरे खाँ जब अपनी जमीन रूपा बनिया को बेचकर पाकिस्तान जाने की तैयारी में था तो रूपा बनिया ने उसे यह कहकर रोक लिया कि क्यों अपनी मातृभूमि को छोड़ रहा है कहीं कुछ नहीं होगा– ''यार, भूरे खाँ मौत सू ऐसो भी कहा डरनो.. . अरे मौत तो याँ ना कहीं और भी आनी है, पर ई कहा मतलब के आदमी मातरभूमि ए छोड़ देए। अन्यायी, ई मुलक हमारा बुजुरगन की जादाद तो है ना, यापै तिहारों भी उतना ही हक है जितनों हमारी है''[4]

यह धर्म और संस्कृति के समन्वित स्वरूप का ही असर है कि दादा खानू जो कि मेवों का लोक देवता अथवा पीर है उसकी मजार पर गलेप चढ़ाकर हिन्दू भी स्वयं को धन्य मानता है। जब सलेमी के लड़के बाबू खाँ ने मज़ार पर खड़ी कीकर को काटा था तो धर्म के नाम पर कोई दंगा होने के बजाय सम्मिलित रूप से इसक भर्त्सना की गई। स्वयं सलेमी ने अपने पुत्र के इस कार्य को अत्यन्त ही घटिया स्तर का बताया। ''मारे कायली के सलेमी कई दिनों क अपनी पौली से बाहर नहीं निकला, अगर कोई बाबू का नाम भी लेता तो सुनते ही सलेमी फूट पड़ता कि ऐसी औलाद से बे–औलाद होना अच्छा है।''[5]

नगीना में तो शायद लोगों के लिए हिन्दू और मुसलमान शब्दों का मायना भी अलग–अलग नहीं है। तभी तो सलेमी बुढ़न रोबड़ा, मनीराम, नबी खाँ, छोटेलाल जैसे अलग–अलग धर्मावलम्बी भी इतने अच्छे मित्र है कि लगता ही नहीं इनमें कही भी धर्म या सम्प्रदाय की गांठे पड़ी हुई है।

असल में मेवों का आदर्श वह हसन खाँ मेवाती है जिसने खानवा के युद्ध में राणा सांगा का साथ दिया था न कि बाबर का क्योंकि उसके लिए धम्र बाद में था, देश पहले। उस स्त्री को अपना आदर्श मानने वाली जाति में धार्मिक विभेद की बात तो सोची नहीं जा सकती। बाबर के इस प्रस्ताव पर कि हम– मजहबी होने के नाते उसे सांगा का नहीं, बाबर का साथ देना चाहिए, हसन खाँ का जवाब एक आदर्श की सृष्टि करता है ''उस मेव सपूत ने जवाब दिया कि मैं पहले एक हिन्दुस्तानी हूँ। इसलिए मैं किसी हमलावार को अपने मुलक को जीतने या गुलाम बनाने नहीं दूँगा... फिर चाहे वह मेरे मजहब का क्यों न हो।''[6]

मेवात क्षेत्र में यूँ तो हिन्दू व मुस्लिमानों के बीच सोहार्दपूर्ण सम्बन्ध दिखायी देते है लेकिन उपन्यास में कई जगह ऐसे उदाहरण आये है जिनसे ज्ञात होता है कि हिन्दू लोग मेवों के घर का खाना पीना नहीं करते किन्तु आपसी मेल–भाव में कहीं कमी नहीं आती। मनीराम और सलेमी तो एक दूसरे की छाया के समान है। इसलिए कहा जा सकता है कि ये लोग धार्मिक तो है, पर धर्मान्ध नहीं। सलेमी की शादी में भूरे खाँ जब कन्हैया को भी बारात में चलने और दावत में आने के लिए आमंत्रित करता है तो धर्म की दीवार आड़े आ जाती है। हिन्दू होकर मुसलमान के घर कैसे खाये, वो भी गोशत आदि। लेकिन भूरे खाँ ने जो कहा वह इनके आपसी मेल भाव को पूर्णतया स्पष्ट कर देता है ''कन्हैया, मैं सब समझ रो हूँ जहाँ तू बोल रो है फिकर मत कर मैंने पहले ही तम जैसान कू सूखा चावल, घी बूरा, और

तीन चार कोरा मटका अलग धरवा दिया है... साथ में तिहारी एक अलग भट्टी खुलवा दूँगो बस, राँदो और खाओ।''[7]

वास्तव में यहाँ हिन्दु व मुस्लिम मेव संस्कृति आपस में इस प्रकार धुली मिली है कि इनके तीज त्यौहार, भाषा, पर्व एक से जान पड़ते है कुछेक धार्मिक अनुष्ठानों को छोड़ दिया जाए तो दोनों संस्कृति आपस में ऐसे घुल मिल गयी है कि अन्तर करना मुश्किल दिखायी देता है। मेवाती लोग बाकायदा नमाज पढ़ते है और हिन्दू लोग मन्दिरों में आरती करते हैं। फिर भी दोनों के आपसी मतभेद नहीं। एक दूसरे के प्रति इसी विश्वास का नतीजा है कि शादी ब्याह, त्यौहार आदि सभी में दोनों धर्मों के लोग मिल जुलकर हिस्सा लेते हैं। सबसे खास यह है कि मेवात में धर्म के आधार पर बाँटने की कोशिशे विफल रहती हैं। छोटेलाल, मनीराम, सलेमी आदि साम्प्रदायिक ताकतों का खुलकर विरोध करते है। और सलेमी की कोशिशों के चलते नगीना हिंसा की लपटो में जलने से बच जाता है।

सन्दर्भ

1. डॉ0 रामेश्वरदयाल, मध्ययुगीन, कृष्ण भक्ति परम्परा और लोक संस्कृति, पाडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 40
2. भगवानदास कोरवाल काला पहाड़, पृ0 93
3. भगवानदास कोरवाल काला पहाड़, पृ0 94
4. भगवानदास कोरवाल काला पहाड़, पृ0 315
5. भगवानदास कोरवाल काला पहाड़, पृ0 61
6. भगवानदास कोरवाल काला पहाड़, पृ0 89
7. भगवानदास कोरवाल काला पहाड़, पृ0 116